बुद्धवर्ष २५४३, पौष पूर्णिमा, २३ नवंबर, १९९९ वर्ष २९ अंक ५

धम्मवाणी

सन्तकायो सन्तवाचो, सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु, उपसन्तोति वुच्चति॥

– धम्मपद २५-१९.

शरीर और वचन से शांत, भली प्रकार (सम्यक) समाधियुक्त, शांति-प्राप्त तथा लोक के आमिष को वमन कर दिये हुए (वितृष्ण) भिक्षु (साधक) को 'उपशांत' कहा जाता है।

धारण करे तो धर्म

समाधि सम्यक हो

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की **ग्यारहवीं कड़ी**)

आठ अंग वाले धर्मपथ के तीन विभाग – शील, समाधि और प्रज्ञा। शील के अंतर्गत धर्म के तीन अंग आये – **सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो।**

वाणी के कर्म हमारे सम्यक हों, शुद्ध हों और वे हमारे जीवन में उतरें, अनुभूति पर उतरें।

शरीर के कर्म हमारे सम्यक हों, शुद्ध हों और जीवन में उतरें, अनुभूति पर उतरें।

आजीविका हमारी सम्यक हो, शुद्ध हो और जीवन में उतरे, अनुभूति पर उतरे। तो ही यह शील का क्षेत्र सम्यक है।

दूसरा विभाग – समाधि का क्षेत्र। जिसमें धर्म के तीन और अंग आये, **सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि।**

सम्यक व्यायाम, ठीक तरह का व्यायाम, कल्याणकारी व्यायाम। हमारा शरीर कमजोर हो जाय, इतना दुर्बल, इतना रोगी हो जाय कि दो कदम भी दृढ़तापूर्वक न चल सके, लड़खड़ाये, डगमगाये। तो कोई समझदार आदमी कहे –अरे भाई, इस शरीर की कुछ कसरत नहीं करते! कसरत करनी चाहिए, शरीर की मांसपेशियों को पुष्ट करना चाहिए ताकि शरीर सबल हो जाय, निरोगा हो जाय।

ठीक इसी प्रकार जब हमारा मन दुर्बल हो जाय, रोगी हो जाय, डगमगाने लगे। और जब कोई व्यक्ति विपश्यना की तपोभूमि में आकर, अंतर्मुखी होकर अपने बारे में सच्चाई का निरीक्षण करना शुरू करता है तो बहुत शीघ्र अनुभूतियों से समझ में आने लगता है कि अरे, कैसा रोगी मन लिए चल रहा हूं! कैसा दुर्बल मन लिए चल रहा हूं! कितना डगमगाता है! कितना डगमगाता है! दो सांस तक भी दृढ़ नहीं रह पाता! अरे, सचमुच दुर्बल है, रोगी है। तो इसको सबल बनाने के लिए, निरोगा बनाने के लिए जो कसरत है वही सम्यक व्यायाम है।

चार प्रकार की कसरत होती है मन को निरोगा बनाने की, सबल बनाने की। पहली कसरत अपने मन को देखते हैं – अपने भीतर। सारा का सारा मार्ग अपने भीतर काया के बारे में जो सच्चाई है उसको अनुभूतियों से जानने का है। तो अनुभूतियों से जानते हैं अपने भीतर, अपने मन की हालत। मेरे मन में ये दुर्गुण हैं, ये दुर्गुण हैं, ये दुर्गुण हैं। ऐसा देख करके मन में कोई अपराध की ग्रंथि नहीं बांध लें। सत्य को यथावत जैसा है वैसा स्वीकार करना है। ये दुर्गुण हैं तो इन्हें निकालना है। तो पहली कसरत कि जो दुर्गुण हैं, उनको धीरे-धीरे निकाले, दूर करे। पहली अच्छी कसरत हुई। सम्यक व्यायाम हुआ।

दूसरी कसरत, फिर अपनी ओर देखता है, अपने भीतर, अपनी ओर झांक कर देखता है। अपने मन के बारे में देखता है कि मेरे मन में अमुक दुर्गुण तो बिल्कुल नहीं हैं। अमुक दुर्गुण तो बिल्कुल नहीं हैं। बड़ी अच्छी बात। जो दुर्गुण नहीं हैं वे कहीं आ न जायँ। तो मन के सारे दरवाजे बंद। जो दुर्गुण नहीं है वे भीतर न आ जायँ। दूसरी कसरत हुई। बड़े काम की कसरत हुई। तो सम्यक व्यायाम हुआ।

तीसरी कसरत, फिर अपने मन को झांक कर देखता है कि मेरे मन में ये सद्गुण हैं, ये सद्गुण हैं। तो गर्व से नहीं भर उठता। घमंड से नहीं भर उठता। ये सद्गुण हैं, अच्छी बात है। ये कहीं निकल न जायँ। इन्हें संभाल कर रखना है और संभाल कर ही नहीं, बल्कि इनका संवर्धन करना है। तीसरी कसरत हुई।

चौथी कसरत, फिर अपने मन को जांच कर देखता है कि अरे, मेरे मन में अमुक सद्गुण तो है ही नहीं? अमुक सद्गुण तो है ही नहीं? तो जो सद्गुण नहीं हैं उनके लिए सारे दरवाजे खुलें, आओ! उनका निवेश करता है। वे सद्गुण अपने मन में लाता है। चौथी कसरत हुई।

बस ये चार कसरत करने लगा तो व्यायाम सम्यक हो गया।

जो दुर्गुण हैं, उन्हें निकाल बाहर करे। जो दुर्गुण नहीं हैं उन्हें भीतर आने न दे। जो सद्गुण हैं उन्हें सुरक्षित ही नहीं रखे, उनका संवर्धन करे। जो सद्गुण नहीं हैं उन्हें अपने मन में प्रवेश पाने का प्रयत्न करे। बस, ये चार व्यायाम, इन्हीं को कहा, **सम्मावायामो** – सम्यक व्यायाम, सम्यक प्रयत्न, सम्यक परिश्रम, सम्यक पुरुषार्थ।

अगला अंग – **सम्मासति** । सति माने स्मृति। २५०० वर्ष में भाषा बदलती है, शब्द बदलते हैं, शब्दों के अर्थ बदलते हैं। आज तो भारत की सारी भाषाओं में 'स्मृति' शब्द का एक ही अर्थ रह गया, मेमोरी, याददाश्त। २५०० –२६०० वर्ष पूर्व के भारत में केवल यही अर्थ नहीं था। एक और अर्थ था और वह बड़ा महत्त्वपूर्ण अर्थ था – सजगता, सम्यक सजगता। किस बात की सजगता? अपने भीतर जो सच्चाई प्रकट हो रही है। अपने बारे में, माने इस शरीर-स्कंध के बारे में, इस चित्तस्कंध के बारे में। इन दोनों के पारस्परिक संबंधों के बारे में जो सच्चाई प्रकट हो रही है उसे यथाभूत, यथाभूत जागरूक होकर जान रहा है। यही सम्यक स्मृति है, सजगता है। जो सचमुच हो रहा है, बस वही। और जो सचमुच हो रहा है उसका कोई चिंतन-मनन नहीं है। उसकी कोई कल्पना नहीं है। अनुभूति पर उतर रहा है।

स्मृति सम्यक तभी हुई जबकि अनुभूति पर उतरने लगी। यह सांस आ रहा है। यह सांस जा रहा है। सांस के प्रति सजग है। बांयी नासिका से गुजर रहा है कि दाहिनी नासिका से गुजर रहा है कि दोनों नासिकाओं से गुजर रहा है। खूब सजग है। कहां छू रहा है? कहां छू रहा है? खूब सजग है। लंबा है कि छोटा है। जैसा भी है। खूब सजग है। अपने सांस के प्रति सजग रहते-रहते-रहते तीन दिनों तक मन की यह सजगता शरीर के दरवाजों पर, नासिका के दरवाजों पर, इसी स्थान पर कायम है। मन को स्थिर करके सजगता का अभ्यास करते हैं और जैसे-जैसे इस अभ्यास में परिपक्व होते जाते हैं, देखते हैं कि मन निरोगा होने लगा। जरा सबल होने लगा। उसकी चंचलता जरा कम होने लगी। उसमें स्थिरता आने लगी और वह स्थूल मन सूक्ष्म होने लगा। सूक्ष्म होने लगा। सूक्ष्म सच्चाइयों को अनुभूति पर उतारने लगा। किसी कल्पना को स्थान नहीं। सच्चाइयों को अनुभूतियों पर उतार रहा है। अनुभूतियों पर उतार रहा है तो स्थूल से सूक्ष्मता की ओर बढ़ते जा रहा है।

आरंभ में अपने शरीर और चित्त के बारे में बड़ी स्थूल-स्थूल सच्चाइयां ही प्रकट होती हैं। उनके प्रति सजग रहता है, सावधान रहता है। जो हो रहा है, न उसे बुरा मानता है, न उसे अच्छा मानता है। ऐसा हो रहा है, बस। और यह जाना जा रहा है। बस, इतना ही। उसको जान रहा है, जान रहा है, तो स्मृति सजग होती जा रही है। स्मृति बलवान होती जा रही है माने सजगता बलवान होती जा रही है। अपने बारे में जो कुछ हो रहा है उसे जानने के काम में बलवान होते जा रहा है। बढ़ते-बढ़ते-बढ़ते सारे शरीर में क्या हो रहा है, उसे जानने लगेगा।

बाहर के संसार में क्या हो रहा है उसके प्रति भी सजग रहना चाहिए, इसमें दो मत नहीं है। लेकिन केवल बाहर की दुनिया के प्रति ही सजग होकर रह जायेंगे, अपने भीतर क्या हो रहा है, इसे नहीं जानेंगे तो अपने भीतर, अपने मानस को सुधारने का काम कैसे करेंगे? अपने भीतर अपने बारे में जो सच्चाई है, उसे जानने का काम कैसे करेंगे? अपने भीतर, अपने मानस में जो विकारों का उद्गम हो रहा है, प्रजनन हो रहा है, उसका संवर्धन हो रहा है, इस सच्चाई को कैसे जान पायेंगे? चिंतन-मनन भले ही कर लें, जान नहीं पायेंगे। और सारा मार्ग तो सम्यकत्व का मार्ग, माने अनुभूति हो। इस सजगता की अनुभूति हो। सजगता अनुभव पर उतर रही है तो समझो ठीक रास्ते चल रहे हैं। बिल्कुल ठीक रास्ते पर चल रहे हैं। काया के भीतर स्थित हो जायेंगे।

"निच्चं कायगतासति, निच्चं कायगता सति" –इस काया के भीतर जो गतिविधि हो रही है, जो गतियां हो रही हैं, उनके प्रति खूब सति है, खूब सजग है, खूब जागरूक है। काया में स्थित हो गया। जो काया में स्थित हो गया वह काया के भीतर अपने विकारों को निकालने में सफल हो गया।

इस काया के प्रति जो "मैं, मैं, मेरे, मेरे" का भाव है उससे छुटकारा पाने में सफल हो गया। इस काया के प्रति जो गहरी आसक्ति पैदा कर ली, उससे छुटकारा पाने में सफल हो गया। इस चित्त के प्रति जो "मैं, मैं, मेरे, मेरे" का भाव है उसके प्रति जो गहरा तादात्म्य हो गया, उससे छुटकारा पाने में सफल हो गया। इस चित्त के प्रति जो गहरी आसक्ति पैदा हो गयी, उससे छुटकारा पाने में सफल हो गया। तो बस, मुक्ति के रास्ते चल पड़ा, मुक्ति के रास्ते चल पड़ा।

यह स्मृति सम्यक न हो, अनुभूति वाली न हो, केवल बौद्धिक स्तर पर ही समझ के रह जायँ तो पूरी बात बनती नहीं। फिर तो बुद्धि का शुद्धिकरण होता है। बुद्धि निर्मल हो जायगी। अच्छी बात है। उतनी-उतनी तो निर्मलता आयी, पर अंतर्मन की गहराइयों तक जो हमारे पास विकारों का संग्रह लिए चल रहे हैं, जो संचय है विकारों का, उसको निकालने का काम बिल्कुल नहीं कर पाये। तो स्मृति सम्यक तब; जबकि सारे शरीर स्कंध में, सारे चित्त स्कंध में, जो कुछ हो रहा है, उसे क्षण-प्रतिक्षण, क्षण-प्रतिक्षण जान रहे हैं। तो सजगता सम्यक है।

इस क्षण अपने शरीर के बारे में, अपने चित्त के बारे में जो सच्चाई प्रकट हुई, उसे जान लिया। अगला क्षण जैसे ही यह क्षण बना और इस क्षण फिर शरीर और चित्त से संबंधित जो सच्चाई प्रकट हुई, बस जान लिया। अगला क्षण जैसे ही यह क्षण बना, जो सच्चाई प्रकट हुई, उसे जान लिया। सच्चाई प्रकट होनी चाहिए, कल्पनाएं नहीं। मेरी परंपरा की यह दार्शनिक मान्यता। मेरी परंपरा की यह दार्शनिक मान्यता। हमारे संप्रदाय की यह दार्शनिक मान्यता। उनका लेप लगाना शुरू कर दिया और उन कल्पनाओं का ध्यान करने लगा और कहे कि मैं बहुत सजग हूं। अरे, उन कल्पनाओं के प्रति सजग है ना भाई! तुझे अनुभूति कहां हुई? अनुभूति पर जो उतर रहा है, बस उसी के प्रति सजग, उसी के प्रति सजग। धीरे-धीरे इस लायक हो गया कि सजगता है, भले एक क्षण ही रही। आगे बढ़ते-बढ़ते पांच-दस क्षण रही, पांच-दस सेकेंड रही, एक मिनट रही, दो मिनट रही, पांच मिनट रही। यों सजग रहने की अवधि बढ़ रही है, बढ़ रही है, बढ़ रही है। इसी को समाधि कहते हैं। क्षण-प्रतिक्षण उत्पन्न होने वाले किसी आलंबन पर चित्त खूब

सजग होकर के उसे देख रहा है और लंबे अरसे तक देख रहा है तो समाधि हुई।

समाधि भी सम्यक समाधि हो तभी काम की बात है। आलंबन सच्चाई का हो, कल्पनाओं का नहीं। किसी कल्पना का ध्यान करते-करते चित्त एकदम समाहित हो जायगा। समाहित होना कठिन बात नहीं है। किसी शब्द को दोहराते-दोहराते-दोहराते मन एकदम समाहित हो जायगा, समाधिस्थ हो जायगा। कोई कठिन बात नहीं है। किसी रूप का, किसी आकृति का ध्यान करते-करते-करते मन एकदम समाधिस्थ हो जायगा, समाहित हो जायगा, कोई कठिन बात नहीं है। लेकिन हम जिस काम के लिए निकले हैं कि अंतर्मन की गहराइयों में शरीर और चित्त के पारस्परिक संबंधों के कारण जो विकारों की उत्पत्ति होती है, वह कहां होती है? उनका संवर्धन होता है, वह कहां होता है? कैसे होता है? कैसे उस संवर्धन को रोका जा सकता है? और कैसे विकारों के संचय का निष्कासन किया जा सकता है? ये सारी बातें एक ओर धरी रह गयीं।

हमारा ऊपर-ऊपर का चित्त समाहित हो गया तो बड़ा शांत हो गया और शांत ही नहीं, किसी माने में थोड़ा-सा निर्मल भी हुआ। पर हमेशा ही निर्मल होता हो, ऐसा आवश्यक नहीं। इसके लिए चित्त एकाग्र हो और कुशलता भी लिए हुए हो – **"कुसलचित्तस्स एकग्गता"** यानी चित्त की कुशलता कायम हो, माने उसमें अकुशल चित्तवृत्तियां न जागें। कुशल चित्तवृत्तियों के साथ चित्त एकाग्र हो रहा है तभी सम्यक समाधि है, अन्यथा चित्त की एकाग्रता तो महज समाधि है। तो केवल समाधि से बात नहीं बनती।

सम्यक समाधि वह जिसका आलंबन राग के आधार वाला नहीं है, द्वेष के आधार वाला नहीं है, मोह-मूढ़ता के आधार वाला नहीं है। समाधियां तो हो जाती हैं – राग के आधार पर भी, द्वेष के आधार पर भी, कल्पनाओं के आधार पर भी, मोह-मूढ़ता के आधार पर भी।

उदाहरणों से समझें। तालाब के किनारे एक बगुला खड़ा है। एक टांग पर खड़ा है। कितना समाधिस्थ है, कितना ध्यानस्थ है। जरा-सा भी नहीं हिलता। न शरीर हिलता है, न मन हिलता है। सारा ध्यान किस बात पर है? इस पानी में कहीं तैर कर आती हुई कोई मछली दिख जाय। मछली दिखी कि उसे हड़प करेगा। इसके लिए समाधिस्थ है, ध्यानस्थ है।

किसी बिल्ली को देखा होगा। चूहे के बिल के पास कैसे खड़ी है? एक रोम तक नहीं हिलता उसका। बड़ी ध्यानस्थ है, बड़ी समाधिस्थ है। किस बात को लेकर? इस बिल में-से कोई चूहा निकले और वह झपट कर दबोच ले। समाधिस्थ है।

एक शिकारी को देखा होगा। अपनी दूनली बंदूक पर कैसे ध्यान लगाये बैठा है। सामने से कोई शिकार दिख जाय और धांय उसे मार दे। समाधिस्थ है।

अरे, दुनिया का बुरे से बुरा काम भी चित्त को एकाग्र करके करना होता है। तो चित्त को एकाग्र कर लेना इस धर्मपंथ का अंग नहीं है। कुशल चित्त को एकाग्र कर लेना, माने आलंबन राग वाला न हो। आलंबन द्वेष वाला न हो। आलंबन कल्पनाओं का, मिथ्या मान्यताओं का, मोह-मूढ़ता का न हो। जो सच्चाई जैसी भी है। बस, उस सच्चाई के आलंबन पर चित्त एकाग्र है। चित्त एकाग्र है। सांस आ रहा है, जा रहा है, उसे जान रहा है। इसमें कोई कल्पना नहीं। यह सत्य है। सही बात अनुभूति पर उतर रही है और अपने शरीर और चित्त से संबंधित है। इस आलंबन पर चित्त एकाग्र है, भले कुछ क्षण के लिए। इसकी अवधि बढ़ती है। फिर एकाग्र होता है थोड़ी और देर के लिए, थोड़ी और देर के लिए। तो समाधि, समाधि, समाधि – सम्यक समाधि है। सांस आ रहा है, जा रहा है। न आते हुए सांस के प्रति राग है। न जाते हुए सांस के प्रति द्वेष है। न ही यह मोह है, अज्ञान है या कल्पना है कि मैं सांस ले रहा हूं। कोई कल्पना नहीं। सचमुच सच्चाई अनुभूति पर उतर रही है। न इस आलंबन को लेकर मन में राग जगाता है, न इस आलंबन को लेकर मन में द्वेष जगाता है। तो बड़ा शुद्ध आलंबन है।

बस, यहीं से काम शुरू किया। इस आलंबन के सहारे-सहारे-सहारे जैसे-जैसे चित्त एकाग्र होता चला जायगा, समाधि एकाग्र होती चली जायगी। उससे और सूक्ष्म, और सूक्ष्म, और सूक्ष्म। इस काया के भीतर क्या हो रहा है, उन सारी सूक्ष्म अवस्थाओं का स्वयं दर्शन करना शुरू कर देगा, अनुभव करना शुरू कर देगा तो प्रज्ञा जगाने का काम हो जायगा।

शील शुद्ध न हो तो समाधि सम्यक नहीं होती। हो ही नहीं सकती। उस समय के भारत में जैसे कहा, ऐसे आचार्य थे, जिनको शील-सदाचार से कोई लेन-देन नहीं। क्या पड़ा है शील-सदाचार में? जो मन में आये सो करो और फिर भी देखो, ऐसा ध्यान करायेंगे, ऐसा आनंद आयेगा, ऐसा आनंद आयेगा। सामान्य व्यक्ति को क्या चाहिए? जो मन में आये सो करो। सदाचार की बात छोड़ो और फिर भी यह जो कहते हैं ना! वैसे करते जाओ। बहुत लोग पीछे लग गये। वह सम्यक मार्ग नहीं। मुक्ति का मार्ग नहीं, विशुद्धि का मार्ग नहीं। आनंद, अरे, किसी बात को लेकर जरा आनंद मना लिया तो बात नहीं बनी। उसी परंपरा के लोग जरा और आगे जाकर के इस विचारधारा को व्यक्त करते हैं कि "यावत् जीवेत सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत्" – मौज करो, चाहे जैसे करो। क्योंकि "भस्मीभूतस्स देहस्स पुनर्जन्मं न विद्यति" – बस, एक जन्म है। जो मौज-शौक पूरा करना हो सो कर लो। और जो कुछ हम कहते हैं उस तरह करते जाओ तो बड़ा आनंद आयेगा।

लेकिन शुद्ध धर्म का रास्ता यह नहीं है। शुद्ध धर्म के लिए शील-सदाचार आधारशिलाएं हैं, नींव हैं। यह नींव कमजोर रह जाय तो धर्म का भवन खड़ा नहीं हो सकता। यह सारी साधना बेकार चली जायगी। जब शील के आधार पर काम करता है तो समाधि सम्यक होती है। शील को भुला दे और चित्त को एकाग्र कर ले तो सम्यक समाधि नहीं होगी और सम्यक समाधि नहीं होगी तो अपनी अनुभूति वाली प्रज्ञा नहीं जागेगी और अनुभूति वाली प्रज्ञा नहीं जागी तो मुक्ति से बहुत दूर है, बहुत दूर है।

शील हमारे निर्मल हों, पुष्ट हों। समाधि हमारी निर्मल हो, पुष्ट हो और तब जागे प्रज्ञा। प्रज्ञा में स्थित होते चले जायँ, स्थितप्रज्ञ होते चले जायँ तो समझो धर्म में स्थित हुए जा रहे हैं। धर्म

की शुद्धता में स्थित हुए जा रहे हैं। फिर तो जीवन में धर्म उतरने लगेगा। और जीवन में धर्म उतरेगा तो ही मंगल होगा।

शील, समाधि, प्रज्ञा में पुष्ट होकर जिस किसी व्यक्ति ने धर्म के मार्ग पर आगे बढ़ना शुरू किया, अरे, उसका मंगल ही मंगल। कल्याण ही कल्याण। उसकी स्वस्ति ही स्वस्ति। मुक्ति ही मुक्ति॥

मुंबई में पूज्य गुरुदेव का सार्वजनिक प्रवचन एवं प्रश्नोत्तर

दिनांक : २८-११-९९, **दिन:** रविवार, सायं ६:३० से ८ बजे तक

स्थान: बोरीवली एजूकेशनल सोसायटी एवं रोटरी क्लब ऑफ बोरीवली के तत्वावधान में - एम. के. हाईस्कूल कंपाउंड, फैक्टरी लेन, बोरीवली(प.), मुंबई-४०००९२. **संपर्क :** १) श्री वीनुभाई वलिया, अध्यक्ष - बी. ए. एस., फोन:८९९०९८४, नि. ८६१४९५८. २) श्री भरत जोशी (वकील), अध्यक्ष - रोटरी क्लब ऑफ बोरीवली, फोन:कार्या.२०१४३५७, नि. ६१४५७२०, २) श्री परेश शाह, कार्या. ८९३३८७६, नि. ८९८८५२५.

मंगल-मृत्यु

मुंबई की श्रीमती मंजु गुप्ता की मां श्रीमती रामदुलारी गुप्ता जो कि अधिकतर अपने पुत्र श्री राजेश गुप्ता के साथ जयपुर या देहरादून रहती थीं और विपश्यना के कई शिविर करके नियमित अभ्यास करती रही थीं। परिवार में अन्य सभी विपश्यी साधक थे। ८ नवंबर की प्रातः अत्यंत पकी हुई अवस्था में अंतिम सांस छोड़ने तक वे पूर्णतया सजग सचेत रहीं और हर बात का सटीक उत्तर दे पा रही थीं। ऐसी पुण्यमय मृत्यु सब को मिले।

भुज के श्री प्रवीण झवेरी लिखते हैं, "मेरे पिता श्री पुरुषोत्तमजी कई वर्ष से विपश्यना करते थे। पिछले दस साल से उन्हें कैंसर का कष्ट था परंतु साधना के बल पर वे सदैव शांत व सहिष्णु बने रहे। ८७ वर्ष की पकी उम्र में मृत्यु के दिन वे अत्यधिक शांत रहे। मरने के सात घंटे बाद भी चेहरे की आभा दर्शनीय थी। अंतिम समय परिवार के सभी विपश्यी साधकों ने साथ बैठ कर साधना की और मंगल मैत्री दी। विपश्यी मां भी शांतिपूर्वक मैत्री देती रही। ऐसी शांत मंगल-मृत्यु सब को मिले।..."

दूहा धरम रा

सील समाधी ग्यान री, आ तिरवेणी धार।
ईं संगम मँह न्हावतां, खुलै मुक्ति रा द्वार॥

काया करम सुधार ले, वाणी करम सुधार।
चित रा करम सुधार ले, यो जीवन रो सार॥

बैठ पालथी मार कर, काया सीधी राख।
मौन मौन कर चित्त नै, चाख मुक्तिरस चाख॥

साधक काया थिर करै, राखै चित्त अडोळ।
छण छण जाग्रत रैवतो, गांठ्यां लेवै खोल॥

देख देख निज चित्त नै, चित्त कितो वाचाळ।
मौन मौन कर मौन कर, मौनी मुनी निहाल॥

मौन चित्त ही सबळ है, मौन चित्त ही स्वच्छ।
देख देख मन मौन कर, फळ पासी परतक्ष॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
२०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

दोहे धर्म के

शील हमारा शुद्ध हो, हो समाधि भी शुद्ध।
जब प्रज्ञा भी शुद्ध हो, होंय तभी हम शुद्ध॥

शीलवान के ध्यान से, प्रज्ञा जाग्रत होय।
अंतर की गांठें खुलें, मानस निर्मल होय॥

बिना शील धारण किये, शुद्ध समाधि न होय।
बिन समाधि प्रज्ञा नहीं, मुक्ति कहां से होय॥

प्रज्ञा शील समाधि ही, शुद्ध धरम का सार।
जो कोई धारण करे, होय दुखों के पार॥

क्षण क्षण मंगल ही जगे, क्षण क्षण सुख ही होय।
क्षण क्षण अपने कर्म पर, सावधान यदि होय॥

काया वाणी मौन है, हुआ चित्त भी मौन।
उस साधक-सा जगत में, भाग्यवान है कौन॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
-४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
-४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५, • पटना- ६७१४४२, • वाराणसी- ३५२३३१,
• बैंगलोर- २२१५३८९, • चेन्नई- ४९८२३१५, • कलकत्ता२४३४८७४
की मंगल कामनाओंसहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ८४०८६, ८४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४३, पौष पूर्णिमा, २३ नवंबर, १९९९**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10 **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६**/७१. Postal Permit number 18/99
आजीवन शुल्क रु. २५०/-, " US $ 100 Postal Reg. Number NSM 16/99. **Licenced to post without Prepayment**

Posting day- **Purnima of Every Month**
Posted at Igatpuri-422403, Dist. Nashik

If not deliverd please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक , महाराष्ट्र भारत
दूरभाष : (०२५५३) ८४०७६
फैक्स: (०२५५३) ८४१७६
Website: www.vri.dhamma.org